ध्यान-विमर्श

यों तो सभी धर्मों और दर्शनोंमें ध्यान, समाधि या योगका प्रतिपादन है । योगदर्शन तो उसीपर आधृत है और योगके सूक्ष्म चिन्तनको लिये हुए है। पर योगका लक्ष्य अणिमा, महिमा, वशित्व आदि ऋद्धि-सिद्धियोंकी उपलब्धि है और योगी उनकी प्राप्तिके लिये योगाराधन करता है। योगद्वारा ऋद्धि-सिद्धियोंको प्राप्त करनेका प्रयोजन भी प्रभाव-प्रदर्शन, चमत्कार-दर्शन आदि है। मुक्ति-लाभ भी योगका एक उद्देश्य है, पर वह गौण है।

जैन दर्शनमें ध्यानका लक्ष्य मुख्यतया कर्म-निरोध और कर्म-निर्जरा है और इन दोनोंके द्वारा अशेष कर्ममुक्ति प्राप्त करना है। यद्यपि योगीको अनेक ऋद्धियाँ-सिद्धियाँ भी उसके योग-प्रभावसे उपलब्ध होती हैं। पर वे उसकी दृष्टिमें प्राप्य नहीं हैं, मात्र आनुषङ्गिक हैं। उनसे उसको न लगाव होता है और न उसके लिये वह ध्यान करता है। वे तथा अन्य स्वर्गादि अभ्युदय उसे उसी प्रकार मिलते हैं जिस प्रकार चावलोंके लिये खेती करनेवाले किसानको भूसा अप्रार्थित मिल जाता है। किसान भूसाको प्राप्त करनेका न लक्ष्य रखता है और न उसके लिये प्रयास ही करता है। योगी भी योगका आराधन मात्र कर्म-निरोध और कर्म-निर्जराके लिये करता है। यदि कोई योगी उन ऋद्धि-सिद्धियोंमें उलझता है—उनमें लुभित होता है तो वह योगके वास्तविक लाभसे वंचित होता है। तत्त्वार्थसूत्रकार आचार्य उमास्वाति[1] स्पष्ट लिखा है कि तप (ध्यान) से संवर (कर्म-निरोध) और कर्म-निर्जरा दोनों होते हैं। आचार्य रामसेन[2] भी अपने तत्त्वानुशासनमें ध्यानको संवर तथा निर्जराका कारण बतलाते हैं। इन दोनोंसे समस्त कर्मोंका अभाव होता है और समस्त कर्माभाव ही मोक्ष है।[3] इससे स्पष्ट है कि जैन दर्शनमें ध्यानका आध्यात्मिक महत्त्व मुख्य है।

ध्यानकी आवश्यकतापर बल देते हुए आचार्य नेमिचन्द्र लिखते हैं[4] कि मुक्तिका उपाय रत्नत्रय है और यह रत्नत्रय व्यवहार तथा निश्चयकी अपेक्षा दो प्रकारका है। यह दोनों प्रकारका रत्नत्रय ध्यानसे ही उपलभ्य है। अतः सम्पूर्ण प्रयत्न करके मुनिको निरन्तर ध्यानका अभ्यास करना चाहिये। तत्त्वार्थसारकार आ० अमृतचन्द्र[5] भी यही कहते हैं। यथार्थमें ध्यानमें जब योगी अपनेसे भिन्न किसी दूसरे मंत्रादि पदार्थका अवलम्बन लेकर उसे ही अपने श्रद्धान, ज्ञान और आचरणका विषय बनाता है तब वह व्यवहार-मोक्षमार्गी होता है और जब केवल अपने आत्माका अवलम्बन लेकर उसे ही श्रद्धा, ज्ञान और चर्याका विषय बनाता है

---

१. 'आस्रवनिरोधः संवरः', 'तपसा निर्जरा च'—त० सू० ९-१, ३।
२. 'तद् ध्यानं निर्जराहेतुः संवरस्य च कारणम्।'—तत्त्वानु० ५६।
३. 'बन्धहेत्वभाव-निर्जराभ्यां कृत्स्नकर्मविप्रमोक्षो मोक्षः'—त० सू० १०-२।
४. दुविहं पि मोक्खहेउं झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा।
तम्हा पयत्तचित्ता जूयं झाणं समब्भसह ।। —द्रव्यसंग्रह गा० ४७।
५. निश्चय-व्यवहाराभ्यां मोक्षमार्गो द्विधा स्थितः।
तत्राद्यः साध्यरूपः स्याद् द्वितीयस्तस्य साधनम् ।।—तत्त्वार्थसार।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तब वह निश्चयमोक्षमार्गी होता है। अतः मोक्ष प्राप्त करानेवाले रत्नत्रयरूप मार्गपर आरूढ़ होनेके लिये योगीको ध्यान बहुत आवश्यक और उपयोगी है।

मनुष्यके चिरन्तन संस्कार उसे विषय और वासनाओंकी ओर ही ले जाते हैं। और इन संस्कारोंकी जनिका एवं उद्बोधिका पाँचों इन्द्रियाँ तो हैं ही, मन तो उन्हें ऐसी प्रेरणा देता है कि उन्हें न जाने योग्य स्थानमें भी जाना पड़ता है। फलतः मनुष्य सदा इन्द्रियों और मनका अपनेको गुलाम बनाकर तदनुसार उचित-अनुचित सब प्रकारकी प्रवृत्ति करता है। परिणाम यह होता है कि वह निरन्तर राग-द्वेषकी भट्टीमें जलता और कष्ट उठाता है। आचार्य अमितगतिने[1] ठीक लिखा है कि आत्मा संयोगके कारण नाना दुःखोंको पाता है। अगर वह इस तथ्यको समझ ले तो उस संयोगके छोड़नेमें उसे एक क्षण भी न लगे। तत्त्वज्ञानसे क्या असम्भव है? यह तत्त्वज्ञान श्रुतज्ञान है और श्रुतज्ञान ही ध्यान है। अतः ध्यानके अभ्यासके लिये सर्वप्रथम जावश्यक है इन्द्रियों और मनपर नियंत्रण। जब तक दोनोंपर नियंत्रण न होगा तब तक मनुष्य विषय-वासनाओंमें डूबा रहेगा और उनसे कष्टोंको भोगता रहेगा। पर यह तथ्य है कि कष्ट या दुःख किसीको इष्ट नहीं है—सभीको सुख और शान्ति इष्ट है। जब वास्तविक स्थिति यह है तब मनुष्यको सत्संगतिसे या शास्त्रज्ञानसे उक्त तथ्यको समझकर विषय-वासनाओंमें ले जानेवाली इन्द्रियों और मनपर नियंत्रण करना जरूरी है। जब इन्द्रिय और मन नियंत्रित रहेंगे तो मनुष्यकी प्रवृत्ति आत्मोन्मुखी अवश्य होगी, क्योंकि वे निर्विषय नहीं रह सकते। आत्मा उनका विषय हो जानेपर स्वाधीन सुख और शान्तिकी उत्तरोत्तर अपूर्व उपलब्धि होती जायेगी।

यह सच है कि इन्द्रियों और मनपर नियंत्रण करना सरल नहीं है, अति दुष्कर है। परन्तु यह भी सच है कि वह असम्भव नहीं है। सामान्य मनुष्य और असामान्य मनुष्यमें यही अन्तर है कि जो कार्य सामान्य मनुष्यके लिए अति दुष्कर होता है वह असामान्य मनुष्यके लिए सम्भव होता है और वह उसे कर डालता है। अतः इन्द्रियों और मनपर नियंत्रण करनेमें आरम्भमें भले ही कठिनाई दिखे। पर संकल्प और दृढ़ताके साथ निरन्तर प्रयत्न करनेपर उस कठिनाईपर विजय पा ली जाती है। इन्द्रियों और मनपर काबू पानेके लिये अनेक उपाय बताये गये हैं। उनमें प्रधान दो उपाय हैं—१. परमात्मभक्ति और २. शास्त्रज्ञान। परमात्मभक्तिके लिए पंचपरमेष्ठीका जप, स्मरण और गुणकीर्तन आवश्यक है। उसे ही अपना शरण (**नान्यथा शरणं नास्ति त्वमेव शरणं मम**) माना जाय। इससे आत्मामें विचित्र प्रकारकी शुद्धि आयेगी। मन और वाणी निर्मल होंगे। और उनके निर्मल होते ही वह ध्यानकी ओर झुकेगा तथा ध्यान द्वारा उपर्युक्त द्विविध मोक्षमार्गको प्राप्त करेगा। परमात्म-भक्तिमें उन सब मंत्रोंका जाप किया जाता है जिनमें केवल अर्हत्, केवल सिद्ध, केवल आचार्य, केवल उपाध्याय, केवल मुनि और या सभीको जपा जाता है। आचार्य विद्यानन्दने[2] लिखा है कि परमेष्ठीकी भक्ति (स्मरण, कीर्तन, ध्यान) से निश्चय ही श्रेयोमार्गकी संसिद्धि होती है। इसीसे उनका स्तवन करना बड़े-बड़े मुनि श्रेष्ठोंने बतलाया है।

इन्द्रियों और मनको वशमें करनेका दूसरा उपाय श्रुतज्ञान है। यह श्रुतज्ञान सम्यक् शास्त्रोंके अनुशीलन, मनन और सतत अभ्याससे प्राप्त होता है। वास्तवमें जब मनका व्यापार शास्त्रस्वाध्यायमें लगा

---

१. संयोगमूला जीवेन प्राप्ता दुःखपरम्परा।
तस्मात्संयोगसम्बधं त्रिधा सर्वं त्यजाम्यहम्॥ —सामायिकपाठ।

२. श्रेयोमार्गसंसिद्धिः प्रसादात्परमेष्ठिनः।
इत्याहुस्तद्गुणस्तोत्रं शास्त्रादौ मुनिपुङ्गवाः॥ —आप्तप० का० २।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होगा—उसके शब्द और अर्थके चिन्तनमें संलग्न होगा तो वह अन्यत्र जायेगा ही कैसे ? और जब वह नहीं जायेगा तो इन्द्रियाँ उस अग्निकी तरह ठंडी (राख) हो जायेंगी, जो ईंधनके अभावमें राख हो जाती हैं। वस्तुतः इन्द्रियोंको मनके व्यापारसे ही खुराक मिलती है। इसीलिये मनको ही बन्ध और मोक्षका कारण कहा गया है। शास्त्रस्वाध्याय मनको नियंत्रित करनेके लिए एक अमोघ उपाय है। सम्भवतः इसीसे **'स्वाध्यायः परमं तपः'** स्वाध्यायको परम तप कहा है।

ये दो मुख्य उपाय हैं इन्द्रियों और मनको नियंत्रित करनेके। इनके नियंत्रित हो जानेपर ध्यान हो सकता है। अन्य सब ओरसे चित्तकी वृत्तियोंको रोककर उसे एक मात्र आत्मामें स्थिर करनेका नाम ही ध्यान है। चित्तको जब तक एक ओर केन्द्रित नहीं किया जाता तब तक न आत्मदर्शन होता है न आत्मज्ञान होता है और न आत्मामें आत्माकी चर्या। और जब तक ये तीनों प्राप्त नहीं होते तब तक दोष और आवरणोंकी निवृत्ति सम्भव नहीं। अतः योगी ध्यानके द्वारा चित् और आनन्दस्वरूप होकर स्वयं परमात्मा हो जाता है। आचार्य रामसेन[1] लिखते हैं कि जिस प्रकार सतत अभ्याससे महाशास्त्र भी अभ्यस्त एवं सुनिश्चित हो जाते हैं उसी प्रकार निरन्तरके ध्यानाभ्याससे ध्यान भी अभ्यस्त एवं सुस्थिर हो जाता है। वे योगीको ध्यान करनेकी प्रेरणा करते हुए कहते हैं—

'हे योगिन् ! यदि तू संसार-बंधनसे छूटना चाहता है तो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चरित्र-रूप रत्नत्रयको ग्रहण करके बन्धके कारणरूप मिथ्यादर्शनादिकके त्यागपूर्वक निरन्तर सद्ध्यानका अभ्यास कर'।

''ध्यानके अभ्यासकी प्रकर्षतासे मोहका नाश करनेवाला चरम-शरीरी योगी तो उसी पर्यायमें मुक्ति प्राप्त करता है और जो चरमशरीरी नहीं है वह उत्तम देवादिकी आयु प्राप्त कर क्रमशः मुक्ति पाता है। यह ध्यानकी ही अपूर्व महिमा है।'

रत्नत्रयमुपादाय त्यक्त्वा बन्ध-निबन्धनम्।
ध्यानमभ्यस्यतां नित्यं यदि योगिन् ! मुमुक्षसे ॥
ध्यानाभ्यास-प्रकर्षेण क्षुस्यन्मोहस्य योगिनः।
चरमाङ्गस्य मुक्तिः स्यात्तदैवान्यस्य च क्रमात् ॥

—आ. रामसेन, तत्त्वानुशासन २२३, २२४।

निःसन्देह ध्यान एक ऐसी चीज है जो परलोकके लिए उत्तम पाथेय है। इस लोकको भी सुखी, स्वस्थ और यशस्वी बनाता है। यह गृहस्थ और मुनि दोनोंके लिए अपनी-अपनी स्थितिके अनुसार उपयोगी है। यदि भारतवासी इसके महत्त्वको समझ लें तो वे पूर्व ऋषियोंके प्रभावपूर्ण आदर्शको विश्वके सामने सहज ही उपस्थित कर सकते हैं। जितेन्द्रिय और मनस्वी सन्तानें होंगी तथा परिवार-नियोजन, आपाधापी, संग्रह-वृत्ति आदि अनेक समस्यायें इसके अनुसरणसे अनायास सुलझ सकती हैं।

■

१. यथाभ्यासेन शास्त्राणि स्थिराणि स्युर्महान्त्यपि।
तथा ध्यानमपि स्थैर्यं लभतेऽभ्यासवर्तिनाम् ॥ —तत्त्वा० ८८।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org